समकालीन लेखिकाओं के साहित्य में स्त्रीवाद

सं. डॉ. अमनदीप कौर

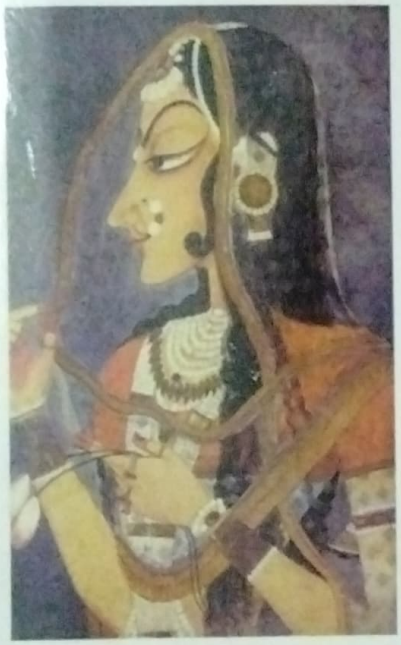
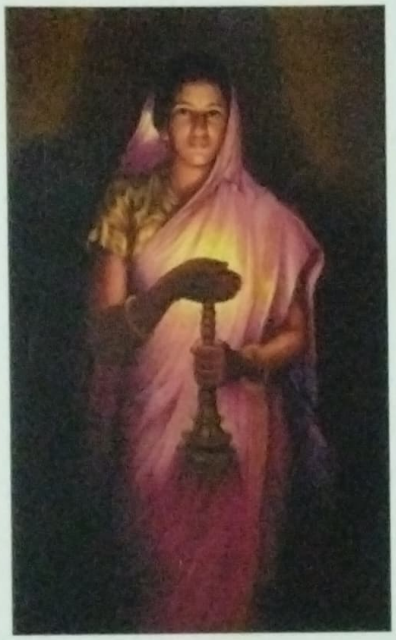
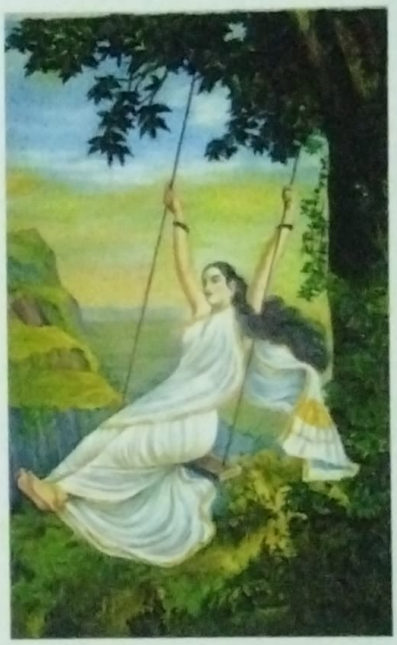
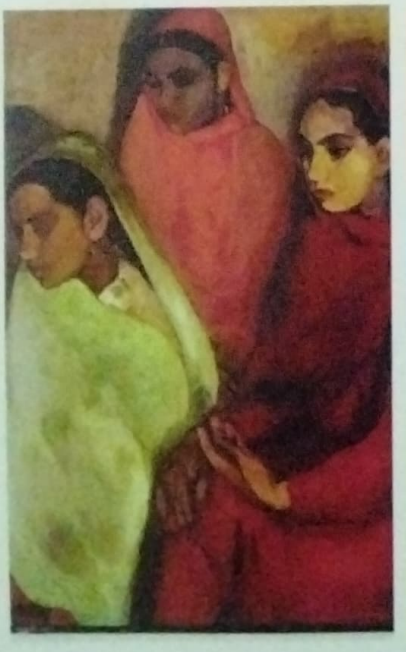

अनुक्रम

सम्पादकीय 13

1. समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्रीवाद : सामाजिक एवं पारिवारिक सन्दर्भ में 17
डॉ. अमनदीप कौर

2. डॉ. माया दुबे की कविताओं में दार्शनिक चिंतन 27
डॉ. नरेश कुमार सिहाग

3. कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में नारीवाद 32
डॉ. गीतू खन्ना

4. समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्रीवाद 45
डॉ. शक्ति बुद्धिराजा

5. समकालीन प्रवासी लेखिकाओं के साहित्य में स्त्रीवाद 51
डॉ. अंजू बाला

6. समकालीन लेखिकाओं के नाटकों में स्त्रीवाद 56
डॉ. विजय वाघ

7. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं के काव्य में स्त्रीवाद 63
डॉ. सिद्धेश्वर काश्यप

8. समकालीन हिंदी महिला उपन्यासों में चित्रित बदलती स्त्री दृष्टि-विवाह और प्रेम के सन्दर्भ में 82
डॉ. सलमी सेबास्टियन

9. समकालीन कहानियों में नारी अंतर्द्वन्द्व 88
डॉ. पेमी जॉन

10. समकालीन लेखिकाओं की आत्मकथाओं में स्त्रीवाद 91
आस्था कच्छप

11. हिन्दी में महिलाओं का नाट्य लेखन 95
डॉ. अनीश के.एन.

समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्रीवाद : सामाजिक एवं पारिवारिक सन्दर्भ में

डॉ. अमनदीप कौर
असिस्टेंट प्रोफेसर
गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, संतपुरा यमुनानगर।

'समकालीन' संस्कृत शब्द है, जिसकी व्युत्पति 'काल' शब्द में 'सम' उपसर्ग और 'इन' प्रत्यय के योग से हुई है। शब्द व्युत्पति की दृष्टि से 'समकालीन' का अर्थ है-'समान काल का'। प्रामाणिक हिन्दी कोश में समकालीन शब्द का अर्थ 'एक ही समय में होने वाला' या 'वर्तमान कालिक' आदि दिए गए हैं। ''नालन्दा विशाल शब्द सागर'' में समकालीन के लिए 'जो एक ही समय में हुए हो' अर्थ दिया गया है।[1]

'स्त्रीवाद' शब्द मूलतः अंग्रेजी शब्द फेमिनिज्म (Feminisum) का हिन्दी अनुवाद है, जिसका अर्थ है-नारी अधिकारवाद। हिन्दी में स्त्रीवाद, नारीवाद अथवा महिलावाद शब्द उस लेखन से संबंधित है, जिसके द्वारा स्त्रियों के हकों, अधिकारों का समर्थन किया जाता है। स्त्री अपनी पहचान के लिए सदियों से पुरुष पर निर्भर रही है। 'नारी' शब्द से ही उसके नर पर आश्रित होने का भाव झलकता है, इसी कारण आजकल 'नारीवाद' के स्थान पर 'स्त्रीवाद' शब्द का प्रयोग अधिक औचित्यपूर्ण माना जाता है। साहित्य में स्त्रीवाद का अर्थ है-स्त्री को केन्द्र में रखकर समाज, संस्कृति, परम्पराओं एवं इतिहास का पुनरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की प्रक्रिया। अपने स्वत्व के प्रति जागरुक स्त्रियां स्त्रीवाद को प्रखर बना रही हैं। स्वयं चेती हुई स्त्री के स्वाधिकार स्त्रीवाद के सरोकार हैं। स्त्रीवाद ने पितृसत्तात्मक मूल्यों, दोहरे मापदण्ड़ों, अंतर्विरोधों को पहचानने की अंतदृष्टि प्रदान करके स्त्री को उसकी स्वतंत्र जीवन्त अस्मिता से परिचित कराया। पुरुष के बराबर अधिकार की माँग, स्त्री के चयन, वरण और नकारने की स्वतंत्रता स्त्री अस्मिता की मुख्य शर्ते हैं। स्त्रीवादी साहित्य में पुरुषों के बराबर स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन दृष्टिगोचर होता है। सुमन राजे के अनुसार :-''शारीरिक, मानसिक और भावात्मक

रूप से स्त्रियों का दमन करने वाले पुरुषों से अपनी रक्षा करते हुए और साथ ही स्त्रियों को दबाकर रखने की पुरुषों में बद्धमूल दुष्प्रवृति की उन्मूलन विधियों का अन्वेषण करने वाली चेतना ही स्त्रीवाद है।"[2]

स्त्रीवादी साहित्य वह है, जिसमें पुरुषों के बराबर स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन दृष्टिगोचर होता है। यह आंदोलन लैंगिक समानता का पक्षधर है तथा इस समानता को प्राप्त करने के लिए सभी स्तरों पर महिलाओं के अधिकारों में वृद्धि की माँग करता है। अनादि काल से नारी जाति समाज में चहुँमुखी शोषण का शिकार बनती रही है, आज नारी को ऐसे ही शोषण से मुक्त करने के प्रयास हो रहे हैं। इसीलिए स्त्रीवादी लेखन आज के समय की जरूरत है। आधुनिकता और उदार सोच के तमाम दावों के बावजूद स्त्री की सामाजिक स्थिति में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं आया है। आज भी वह समझौतों और दोहरे कार्यभार के बीच पीस रही है। पुरुष सत्ता की नीवें हमारे समाज में बहुत गहरे तक धंसी हुई हैं। इसे तोड़ना, बदलना या संवारना एक लम्बी लड़ाई है। साहित्य, शिक्षा और सामाजिक संगठन, हर क्षेत्र में स्त्रियां अपनी-अपनी तरह से लड़ाई लड़ रही हैं और स्त्रियों की पारंपरिक दासता में बदलाव लाने की कोशिश में रत हैं। पुरुषों की नजर में स्त्रियां उपेक्षिता ही रही है, पुरुषों ने उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व के निर्माण के लिए कोई सुविधा नहीं दी है। समाज में आज भी समूचे मूल्य पुरुष द्वारा निर्मित हैं। इस सन्दर्भ में मैत्रेयी पुष्पा का वक्तव्य है कि "पुरुष के लिए सबसे बड़ी चुनौती स्त्री है, उसको वश में करने के लिए वह जिंदगी भर न जाने कितने प्रयास करता है कि किसी तरह औरत के वजूद को तोड़ सके।"[3]

आधुनिक नारी बाहरी तौर पर काफी आगे पहुँची है, लेकिन जितना पहुँचना चाहिए था, वहाँ तक नहीं पहुँच पाई है। स्त्रीवाद के युग में स्त्री की स्थिति में आया सब से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि वह पुरुष के समान ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत हैं, लेकिन इसके लिए भीतर और बाहर दोनों ओर से टूटना पड़ता है। वह दिनभर नौकरी करके घर लौटती है, तो उसे पारिवारिक दायित्व भी निभाना पड़ता है। स्त्रीवाद के विषय में जगदीश्वर चतुर्वेदी ने लिखा है :-" स्त्री साहित्य वस्तुतः स्त्री की अनुभूति का साहिय है यह ऐसी अनुभूतियां हैं, जो अभी तक दबी हुई थी, दमित थी, उत्पीड़ित थी।"[4] स्त्रीवादी साहित्य के दायित्व को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं :-" स्त्री की व्यक्ति के रुप में अस्मिता को स्थापित करना, उसकी संवेदनाओं, भावों एवं विचारों को अभिव्यक्ति देना स्त्री साहित्य का बुनियादी दायित्व है।"[5] वह अगर इस दायित्व को भली भांति निभाता है तो स्त्री को उसकी पारंपरिक भूमिकाओं में से बाहर निकालकर स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करने में जरूर सहायता मिलेगी। स्त्रीवाद, स्त्री की शोषण से मुक्ति चाहता है, ताकि वह स्वतंत्र ढंग से जी

सके। वह पूर्ण स्वाधीन हो। समाज की निर्णायक शक्ति हो। "संस्कृति के हजारों वर्षों के इतिहास ने स्त्री के 'स्त्रीत्व' को नकारते हुए उसे जिस पशुतुल्य अवस्था तक पहुँचाया है, उससे बाहर निकलकर अपने अधिकार प्राप्त कर प्रस्थापित करने के लिए उत्पन्न मंच स्त्रीवाद है।"[6]

समकालीन महिला लेखन 'पितृसत्तात्मक मानसिकता' के विरुद्ध आवाज उठाने के बजाय उन 'जड़ीभूत रुढ़ियों' को समाप्त करने पर जोर देता है, जो स्त्री को प्रताड़ित कर बदतर जिन्दगी जीने पर मजबूर करती हैं। समकालीन महिला लेखन न सिर्फ स्त्री को समानता, स्वतंत्रता जैसे जीवन के मूलभूत अधिकारों को देने की माँग करता है, वरन् उन सभी प्राकृतिक अधिकारों को भी चाहता है, जो एक मनुष्य होने के नाते इस जीव-जगत में मानव मात्र को मिले हैं। हिन्दी उपन्यास साहित्य की लंबी परम्परा में स्त्री के विविध रुपों तथा उसके संघर्षों का चित्रण मिलता है। नारी को देवी से सहचारिणी माना गया, किन्तु उसे पुरुष के समान कभी नहीं माना गया। समकालीन उपन्यासों के स्त्री पात्रों का संघर्ष पुरुषों के खिलाफ नहीं बल्कि उस वातावरण के खिलाफ है, जिसमें वह जीने को मजबूर है, जिसे वह बदलना चाहती है। समकालीन स्त्री साहित्य ने जीवन के गंभीर विषयों को भी बड़ी सहजता और सामान्य रुप से उठाया है। इस युग की लेखिकाओं ने अपने अनुभवों के आधार पर आज की नारी की सामाजिक स्थिति और मानसिकता को बड़ी गहराई से उकेरा है। नारी ने नारी की मनः स्थिति को जिस गहराई से पहचाना है और जिस निपुणता से साहित्य में अभिव्यक्त किया है, वह सचमुच ही प्रशंसनीय है। आज नारी अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए परम्परागत मूल्यों से लड़ रही है। इन लेखिकाओं की नारियाँ "आँचल में दूध और आँखों में पानी" लेकर नहीं बढ़ती, बल्कि अधिकांश रचनाओं की नारी अपने अधिकारों के लिए विद्रोह करती है। इन महिला लेखिकाओं के संबंध में डॉ. शोभा वेरेकर का कथन है -"जाहिर है, महिला लेखन में विलक्षण पठनीयता, विश्वसनीयता, जिजीविषा और मार्मिकता के कारण ही इसे विशाल पाठक वर्ग मिला है। आत्म अभिव्यक्ति की आकांक्षा के साथ-साथ आत्म सजगता और परिवेश चेतना महिला कहानीकार के रचनात्मक सरोकार का केन्द्रीय बिन्दु रहा है। अर्थात इसी आत्मसजगता और व्यक्तित्व की खोज में बड़ी संख्या में महिला रचनाकार सामने आई।"[7]

स्त्री चिंतन आज विश्व चिंतन की बहस में सबसे सशक्त चिंतन इसलिए है क्योंकि इसमें अरबों, करोड़ों स्त्रियों के दमन, अन्याय एवं उत्पीड़न से मुक्ति की सोच निहित है। समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों में विचारों की परिपक्वता और गहन मानवीय संवेदना को उकेरने की कला में मैत्रेयी पुष्पा काफी चर्चित है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है। यह

संघर्ष समाज से है, रूढ़ियों से है, थोपी गई परंपराओं से है और पुरुष की अहं में लिपटी मानसिकता से है। पुष्पा जी की नारियाँ स्वयं ही अपनी लड़ाई लड़ती हैं और पुरुष के वर्चस्व को तोड़ने का प्रयास करती है। 'इदन्नमम्' उपन्यास की नायिका मंदाकिनी केवल निजी स्तर पर ही संघर्ष नहीं करती बल्कि मजदूरों के हक के लिए बड़े आत्मविश्वास के साथ गाँव के लोगों के सहयोग से ठेकेदारों के विरुद्ध एक लंबी लड़ाई का अभियान छेड़ती है। पुरुषों ने अन्याय का प्रतिकार करने के लिए स्त्रियों की शक्ति व बुद्धि पर भरोसा किया। इसलिए पूरे विश्वास के साथ "श्यामली गाँव के बुजुर्ग मंदा के हाथ में नेतृत्व की मशाल देकर उसके पीछे-पीछे चलने का विश्वास देते है। आज पुरुष मानसिकता में स्त्रियों के प्रति उदार दृष्टिकोण तथा सहयोग की भावना विकसित होते हुए हम देख सकते हैं। द्वारिका कक्का के कथन से स्पष्ट होता है -"तें तो आगे-आगे चल बेटा। फिर अनुगामी तो चले आयेंगें स्वतः ही। तेरी गत ही तो चलना है हमें, कंधे से कंधा मिलाकर, पग के चिन पर पग धरकर।"[8] लेखिका ने स्त्री जीवन की सार्थकता को स्थापित किया है।

आज की स्त्री अत्यंत संघर्षशील है, वह सामाजिक और मानसिक तनावों से मुक्ति पाने के लिए निरंतर प्रयास कर रही है। इन प्रयासों में उन्हें कुछ सफलता अवश्य मिली है, फिर भी स्त्री इन तनावों से पूरी तरह मुक्त नहीं हुई है। सूर्यबाला का प्रमुख उपन्यास 'यामिनी की कथा' स्त्री मन की तीव्र संवेदनात्मक धरातल से विकसित होता है। इसमें यामिनी का मानसिक संघर्ष चित्रित किया है। यामिनी मामूली स्त्री नहीं है, वह अपने पति विश्वास से जो प्यार चाहती है, वह शारीरिक से ज्यादा मानसिक है। विश्वास मानता है कि वह अपनी पत्नी की सारी ख्वाहिशें पूरी कर रहा है। इससे ज्यादा देने के लिए उसके पास कुछ भी नहीं है। यामिनी पूछती है कि "तो मेरी सबसे बड़ी विड़ंबना यही है कि मैं आपके जीवन में तब आई जब आपके पास देने-लेने के लिए कुछ है ही नहीं।"[9] यह सुनकर विश्वास को गुस्सा आता है उसे लगता है कि यामिनी ने उसके पुरुषत्व को चुनौती दी है। लेकिन यामिनी स्पष्ट करती है कि "सुनिए मैं शरीर की बात नहीं कर रही, आपके शरीर ने मुझे बहुत कुछ दिया, लेकिन पुरुषत्व को शरीर की सीमा में बाँध कर नहीं देखती। आप भी ऐसा कर उसकी बेइज्जती मत कीजिए। पुरुषत्व की सीमा शरीर से कहीं भव्य होती है। मैं इसी भव्यता और ऊँचाई की बात कर रही हूँ।"[10] यामिनी की बात को समझने की क्षमता विश्वास में नहीं है।

'शाल्मली' नासिरा शर्मा का बहुचर्चित उपन्यास है, शाल्मली उपन्यास में स्त्री का एक अलग और नया रूप उभरा है। शाल्मली इसमें परंपरागत नायिका नहीं है, बल्कि वह अपनी मौजूदगी से यह अहसास जगाती है कि परिस्थितियों के साथ व्यक्ति का सरोकार चाहे जितना गहरा हो पर उसे तोड़ दिए जाने के प्रति मौन

स्वीकार नहीं होना चाहिए। शादी के बाद शाल्मली के जीवन में एक ही ध्वनि गूँजती थी कि नरेश पति है और वह पत्नी। स्वामी और दासी का संबंध शाल्मली और नरेश के बीच एक मजबूत दीवार का रुप धारण करने लगी थी। नरेश हमेशा यह वाक्य बोलता था कि, "तुम ठहरी एक आधुनिक विचार की महिला....विचारों में स्वतंत्र, व्यवहार में उन्मुक्त, तुम्हारे संस्कार हमसे अलग हैं।"[11] नरेश का यह वाक्य सुनते-सुनते शाल्मली को आधुनिक शब्द से घृणा होने लगी थी। शाल्मली समय से पहले ही जीवन संघर्ष में कूद पड़ी थी। उम्र से ज्यादा उस में एक गंभीरता आ चुकी थी, वह नरेश को पूरी तरह समझ गयी थी, लेकिन सवाल समझने का नहीं, उसके नकारात्मक व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व के विकास को ढूढ़ने का है।

कृष्णा सोबती हिन्दी साहित्य की एक सशक्त स्त्रीवादी लेखिका है, इन्होंने अपने लेखन में स्त्री की बदलती हुई स्थिति, उसकी यातनाओं, संघर्षों और स्त्रीमन की पीड़ा को बड़े साहस से प्रस्तुत किया है। 'मित्रो मरजानी' कृष्णा सोबती का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें प्रेम चित्रण को एक नया रूप, नया कलेवर देने का प्रयास किया गया है। उपन्यास की नायिका सुमित्रावंती एक निर्भीक, दबंग और बोल्ड नारी पात्र है, जो अपनी आवश्यकताओं को लेकर घुटती नहीं रहती बल्कि निर्भय होकर सबके सामने रखती है। मित्रो एक ऐसी स्त्री है जो अपनी देहगत समस्याओं पर विचार करती है, अपनी यौनच्छाओं को प्रकट करती है। मित्रो के विषय में राजेन्द्र यादव कहते हैं, "मित्रो हिन्दी साहित्य की एकमात्र नारी है जो अपनी जरुरत को अपनी जबान में कहती है, अपनी भाषा में अपने होने की घोषणा करती है।"[12] व्यक्ति के लिए यौन तृप्ति भी उतनी ही आवश्यक है जितनी पेट की भूख का मिटना, मित्रो इसकी जीती जागती प्रमाण है। परिवार में जब मित्रो के मातृत्व पर प्रश्नचिह्न लगाया जाता है तब वह कहती है कि, "मेरा बस चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूँ, पर अम्मा अपने लाड़ले बेटे का भी तो आड़तोड़ जुटाओं। निगोड़े मेरे पत्थर के बूत में भी कोई हरकत तो हो।"[13] इस तरह स्त्री पहली बार अपने अनुभवों के साथ खुलकर बाहर आती है। वह पुरुष की नपुंसकता की ओर संकेत करती है।

स्त्री मुक्ति व स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंद आचरण या देह प्रदर्शन नहीं बल्कि समाज में पुरुषों के सामने स्त्रियों को प्राप्त अधिकारों का सही उपयोग है। भारत में स्त्री जागरण या स्वतंत्रता संबंधी जैसे-जैसे आंदोलन शुरू हुए, वैसे-वैसे स्त्री में 'स्व' की भावना जागृत होने लगी। अब वह अपनी अस्मिता को पहचानने लगी है। वह स्त्री को शोषण से मुक्त कराने और उसकी स्वतंत्र अस्मिता को स्थापित करने का प्रयास करती है। समकालीन लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में ऐसी स्त्री की छवि को अंकित किया है, जो स्वयं संघर्ष करती है। अपनी लड़ाई खुद लड़ती है और अधिकारों को स्वयं प्राप्त करती है। प्रभा खेतान कृत 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में

लेखिका ने प्रिया के माध्यम से स्त्री की स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता का वास्तविक जीवन अंकित किया है। प्रिया एक ऐसी स्त्री का प्रतीक है जो सदैव शोषण का शिकार होती है, चाहे समाज की जर्जर मान्यता हो या पुरुष की आदिम भूख। लेकिन प्रिया टूटती नहीं है बल्कि शोषण करने वालों के लिए एक चुनौती बन जाती है और आत्मबल से नये पथ का अनुसरण करती है, "मेरे साथ मेरा अकेलापन है, पर यह अकेलापन मुझे जीवन का अर्थ समझा रही है। कैसे मैंने अपने आपको बचाया है, अपने मूल्यों को जीवन में संजोया है। हाँ टूटी हूँ, बार-बार टूटी हूँ....पर कहीं तो चोट के निशान नहीं....दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लोंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई हूँ। अड़तालीस की इस उम्र में एक पूरी की पूरी साबुत औरत हूँ। जो ज़िन्दगी झेल नहीं रही बल्कि हंसते हुए जी रही है। जिसे अपनी उपलब्धियों पर नाज़ है।"[14] प्रिया आधुनिक स्त्री शक्ति की पहचान बनकर अपने चरित्र को सदियों से शोषित, पीड़ित नारी की पंक्ति से अलग करना चाहती है। प्रिया समाज और परंपरा की जड़ मूल्यों को चुनौती देकर अपनी खोई अस्मिता को पुनः स्थापित कर एक सशक्त नारी के रूप में खड़ी होना चाहती है।

मृदुला गर्ग कृत 'कठगुलाब' भारतीय स्त्रियों की पीड़ा एवं संघर्ष का जीवंत दस्तावेज है। इस सशक्त औपन्यासिक कृति में स्त्री पर घटित अन्याय, अत्याचार एवं उसकी वेदना के साथ स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिल बनावट और उसके रेशे-रेशे को व्याख्यायित करने की छटपटाहट का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। 'कठगुलाब' का प्रतीकात्मक अर्थ है-'नारी की जिजीविषा'। इस कृति में मृदुला गर्ग ने रेखांकित किया है कि स्त्रियां गुलाब नहीं है, जो उग जाने पर अपने आप खिल भी जाता है। वे कठगुलाब हैं, जिन्हें थोड़ी-सी देखभाल के साथ खिलाना पड़ता है। 'कठगुलाब' उपन्यास, पुरुष प्रधान समाज में जी रही स्त्री के शोषण तथा मुक्ति की व्यथा-कथा है। स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा, नीरजा आदि इस उपन्यास की मुख्य स्त्री पात्र हैं। इन सभी को पुरुषों से नहीं, बल्कि निर्लज्ज व्यवस्था से मुक्ति की तलाश रहती है। ये सभी स्त्री पात्र विभिन्न स्तरों पर संघर्षरत दिखाई देते हैं और स्त्री पर हो रहे शोषण को दर्शाते हुए लेखिका नायिका नमिता द्वारा कहलवाती है कि-"कैसी अभागिने हैं हम दोनों, मेरी जिंदगी माँ ने चौपट की, तेरी पिता ने।"[15] लेखिका ने स्त्री की अस्मिता के सवाल को उठाया है और इन संघर्षों से जुझते हुए वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण करती हैं। आज आधुनिक कालखण्ड में सदियों से शोषित स्त्री संगठित होकर पुरुष की सत्ता के विरोध में खड़ी हो रही है। मृदुला जी ने 'कठगुलाब' में इस संगठन को सफलता से अंकित किया है। यहाँ प्रत्येक स्त्री एक छत्र के नीचे आकर अपनी अस्मिता खोजती नजर आती है।

चित्रा मुद्गल के अनुसार स्त्री स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंद आचरण या 'फ्री सेक्स'

नहीं, समाज में पुरुषों के समकक्ष स्त्रियों को प्राप्त अधिकारों का सही उपयोग है। पुरुष द्वारा स्त्री को केवल शरीर समझने वाली बीमार मानसिकता का विरोध कर स्त्री की बौद्धिक प्रतिभा को प्रमाणित करने का प्रयास है। चित्रा जी ने 'एक जमीन अपनी' उपन्यास में अंकिता के माध्यम से स्त्रीवाद का मुद्दा उठाया है। स्त्री के मस्तिष्क को नकार कर उसे केवल शरीर समझने वालों के लिए अंकिता कहती है,

"ऐसे पुरुष जो कि स्त्री को मात्र जिस्म समझते हैं....उन्हें औरत को स्वयं ठुकराकर यह जता देना चाहिए कि वह भी आत्मसम्मान रखती है"।[16]

अंकिता स्त्री स्वतंत्रता के संदर्भ में पुरुष को प्रतिपक्ष नहीं बनाती, बल्कि स्त्री-पुरुष साझेदारी की वकालत करती है। उसका कहना है,

"मैं स्त्री और पुरुष की समान साझेदारी की पक्षधर हूँ किंतु उसके अंहवादी शोषण स्वरुप की नहीं....पुरुष को उसे बाड़ से मुक्त कर बराबरी का दर्जा देना होगा ... नहीं देता तो स्त्री को घर, परिवार और समाज के आतंक से आतंकित न होकर खोखली दीवारों से सिर पटक-पटककर प्राण देने के बजाय, बाहर निकलने का साहस जुटा आत्मनिर्भर हो नए सिरे से जीवन जीने के विकल्पों को खोजना चाहिए"।[17]

यहाँ लेखिका विवाह के नाम पर स्त्री की अस्मिता के कुंठित होने पर संबंध-विच्छेद को आवश्यक मानती हुई यह आवश्यकता प्रतिपादित करती है कि स्त्री स्वयं आत्मनिर्भर बने।

स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं परंतु इस पुरुष प्रधान संस्कृति में पुरुष ने हमेशा ही स्त्री को दासी समझा है। सीमोन द बोउवार लिखती हैं,

"पुरुष जान-बूझकर स्त्री को बौना रखता है। स्त्री न देवी है, न राक्षसी, वह मानवी है जिसे समाज की फूहड़ प्रथाओं ने दासता में जकड़ कर रख दिया है"।[18]

पुरुष ने जब स्त्री पर शोषण और अत्याचार करना प्रारंभ किया, उसे व्यक्ति से वस्तु समझा, तभी स्त्री ने उसके अत्याचारों और शोषण का सक्रिय विरोध करने के लिए आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर होने का प्रयत्न किया। इसी स्वावलंबन ने उसका सर्वांगीण विकास कर, उसे पराधीनता तथा अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने की ताकत दी। स्त्री मुक्ति के संबंध में ममता कालिया कहती हैं,

"दरअसल जिस समाज में नारी जितने अधिक बंधनों में जकड़ी रही, वहाँ नारी स्वातंत्र्य की उतनी ही जरुरत महसूस की गई।"

ममता जी की रचनाओं में घरेलू स्त्री के अतिरिक्त कामकाजी स्त्री भी बंधनों से मुक्त नहीं है। पराधीन स्त्री निराश व चिंतित होकर जिंदगी से मुक्ति की कामना करती है। 'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में संदीप अपनी पत्नी को बात-बात पर तानों और व्यंग्यों से ठेस पहुँचाता है। कभी-कभी वह इतना अमानवीय और दानव रूप धारण कर लेता कि पत्नी के बाल झिंझोड़ने में उसे कोई संकोच नहीं होता।

कविता उसकी क्रूरता झेलती, तिलमिलाती और टूटती है। कई बार जब उसकी सहनशक्ति समाप्त हो जाती तब सोचती,

"वह घर छोड़कर भाग जाए। उसने अपना इरादा संदीप को बताया, पर उसके ऐसा कहते ही संदीप भावुक हो गया, उससे माफी माँगने लगा, बच्चों की तरह हिलक-हिलककर रोया और न जाने कितनी बार उसने अपना हाथ कविता के सिर पर रखकर कभी न पीने की कसमें खाई।"[19]

हिन्दी उपन्यास साहित्य की समकालीन लेखिकाओं में निरुपमा सेवती का प्रमुख स्थान है। उनके लेखन में स्त्रीवाद का मुद्दा उभरकर सामने आया है। 'पतझड़ की आवाजें' उनका प्रथम उपन्यास है। उपन्यास की नायिका अनुभा आधुनिक सत्व और स्वाभिमान का प्रतिनिधित्व करती है। आर्थिक विपन्नता के कारण अनुभा के परिवार को एक ऐसे मोहल्ले में रहना पड़ता है, जो बदनाम है। हमारे यहाँ भ्रष्ट माहौल में स्त्रियों के लिए केवल प्रतिभा के बल पर आगे बढ़ना मुश्किल-सा होता जा रहा है। जो स्त्री अपने शरीर के चेक को भुनाती है, वह आगे निकल जाती है और जो यह नहीं कर सकती उसकी नियति में पिछड़ना ही रहता है। उनका कहना है कि,

"इस मर्द जाति के साथ तभी सोओ, अगर माल हासिल होता हो या पोजिशन हासिल होती हो"।[20]

लेकिन अनुभा को अपने नारी सम्मान की रक्षा के लिए दोनों नौकरियां छोड़नी पड़ती हैं। वह अपने आस-पास के माहौल तथा स्त्री के गिरते जीवन मूल्यों से बहुत परेशान एवं दुःखी रहती है।

स्त्री की स्वतंत्र और सशक्त छवि के निर्माण की छटपटाहट उषा प्रियंवदा के उपन्यास साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने स्त्री जीवन की संवेदनाओं को इस दृष्टि से चित्रित किया है, जिससे उसे अपने अस्तित्व व व्यक्तित्व को बनाए रखने में समाज से विद्रोह के स्वर दिखाई पड़े। 'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास के माध्यम से उषा जी आधुनिक मध्यवर्गीय स्वच्छंद स्त्री के अन्तर्द्वन्द्व को बड़ी कुशलता से व्यक्त करती हैं। प्रस्तुत उपन्यास स्त्री संबंधित उन तमाम भारतीय परम्परागत मान्यताओं पर प्रहार करता है, जहाँ वह सदैव ही पुरुष सत्ता के अधीन होने चाहिए, भले ही वह पुरुष पिता है, पति है, भाई है, सन्तान है। उषा प्रियंवदा का उपन्यास 'रूकोगी नहीं राधिका' इसी चिर निरंतर पुरुषवादी मानसिकता को चूर-चूर करते हुए एक स्वतंत्र स्त्री अस्मिता के गढ़ को दर्शाता है। इसी उपन्यास के माध्यम से स्त्री मुक्ति का स्वर सुनाई देता है। उपन्यास की नायिका राधिका अपना जीवन निर्णय लेने में सक्षम है तथा अपने ऊपर थोपे गये किसी भी प्रकार के निर्णय को वह अस्वीकार करती है और एक आधुनिक शिक्षित स्त्री के रुप में सदियों से चली आ रही उन तमाम मान्यताओं को तोड़ते हुए जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण अपनाती है।

वह किसी भी प्रकार के वैवाहिक बंधन में नहीं बंधती और न ही पिता के द्वारा बनाये गये संबंधों में बंधना चाहती है। प्रत्येक बंधन को नकारते हुए वह स्वच्छंद जीवन जीना चाहती है। भारत लौटने पर राधिका, मनीष और अक्षय दोनों पुरुष पात्रों के सम्पर्क में आती है, वह विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती। वह मनीष को समझा देती है कि,

"तुम बार-बार विवाह की बात क्यों छेड़ देते हो, मैं अभी विवाह के मूड में नहीं हूँ।"[21]

राधिका विवाह के बंधन में बंधना नहीं चाहती है, आज की स्त्री उन्मुक्त और स्वतंत्र रहना चाहती है। इस अर्थ में वह एक आधुनिक सोच अपनाने वाली मुक्तगामी स्त्री का प्रतीक है। ये उषा प्रियंवदा की आधुनिक स्त्री है जो पुरुष के समक्ष पहली शर्त रखती है। सम्पूर्ण उपन्यास में लेखिका ने राधिका का उन्मुक्त वातावरण प्रस्तुत किया है, जिससे राधिका जैसे स्वच्छंद व्यक्तित्व को नया आयाम मिलता है। वस्तुतः सदियों से पराधीन स्त्री की उन तमाम बेड़ियों को उषा जी तोड़ते हुए एक उन्मुक्त स्त्री, एक स्वच्छंद स्त्री की छवि को गढ़ती है।

समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री मुक्ति का स्वर स्पष्ट सुनाई देता है। इन्होंने कई ऐसे स्त्री पात्रों को उभारा है जो अपनी क्षमता का परिचय संघर्षशीलता से देते हैं। स्त्री का संघर्ष पुरुष से नहीं है, बल्कि उसकी लड़ाई उस सामाजिक व्यवस्था, तंत्र और मानसिकता से है जिसने सभ्यता के विकास की आरम्भिक स्थिति से ही पुरुष की तुलना में स्त्री को कमतर, कमजोर और पुरुष पर निर्भर रुप से देखा। आज के बदलते दौर में जीवन मूल्य बदल रहे हैं। स्त्रियों के जीवन में कुछ समस्याएं ऐसी हैं जो सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न हुई हैं और कुछ समस्याएं ऐसी हैं जो स्त्री होने के कारण उत्पन्न हुई हैं। ये समस्याएं पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा दी गई हैं। जब तक सामाजिक दृष्टिकोण नहीं बदलेगा, तब तक ये समस्याएं बनी रहेंगी। स्त्रीवादी लेखन के सन्दर्भ में रेखा कस्तवार लिखती हैं-

"स्त्रीवादी लेखन का प्रमुख नारा है 'पर्सनल इज़ पोलिटिकल'। यह नारा स्त्री के संघर्षों, व्यक्तिगत अनुभवों और सत्य का खुलासा स्त्री की जुबानी करने का पक्षधर है ताकि उसकी त्रासद स्थिति का बोध समाज को हो सके। स्त्री लेखन जब अपने वैयक्तिक अनुभवों की अभिव्यक्ति की बात करता है तब रचना की नायिका के साथ स्त्री रचनाकार को जोड़कर देखना पाठक के लिए आसान हो जाता है। 'फेक्टस' और 'फिक्शन' का भेद मिट जाता है। स्त्री जब लिखती है तब अपने निजी जीवन और निजता को दाँव पर लगा रही होती है। अपने घर-परिवार और समाज का भय और प्रतिक्रिया का डर अवचेतन रूप से उसकी कलम को संचालित कर 'सेल्फ सेंसर' का काम करता है।"[22] आगे वह पुनः कहती हैं कि-

"स्त्री जब स्त्री के बारे में लिखती है स्वतंत्रता, अस्मिता, समान अवसरों और अधिकारों के बारे में लिखती है, व्यवस्था के लिए खतरा पैदा करती है। आन्तरिक और बाह्य जगत के अनुभवों को दुःसाहस के साथ लिखने वाली न केवल भारतीय वरन् समूचे विश्व साहित्य में महान लेखिकाओं का त्रासद जीवन शोध का विषय है।"[23] इस प्रकार स्त्रीवादी दृष्टि की व्यापक परिकल्पना की जाए तो इसमें स्त्रियों के शोषण, उत्पीड़न एवं उनकी सम्भावनाओं के उचित समाधान प्रस्तुत किए गए हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नवलजी, नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ. 1404
2. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, पृ. 305
3. मैत्रेयी पुष्पा, चर्चा हमारी, पृ. 21
4. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 5
5. वही, पृ. 8
6. डॉ. अश्विनी धोंगड़े, स्त्रीवादी समीक्षा : स्वरूप आणि उपयोजन
7. शोभा वेरेकर, नारी विमर्श, अभय प्रकाशन कानपुर 2010, पृ. 85
8. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम्, किताबघर प्रकाशन दिल्ली 1994, पृ. 197
9. सूर्यबाला, यामिनी की कथा, पृ. 32
10. वही, पृ. 33
11. नासिरा शर्मा, शाल्मली, पृ. 11
12. आदमी की निगाह में औरत, पृ. 65
13. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, पृ. 75
14. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, पृ. 24-25
15. मृदुला गर्ग, कठगुलाब, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली 2012, पृ. 20
16. चित्रा मुद्गल, एक जमीन अपनी, पृ. 39
17. वही, पृ. 83
18. सीमोन द बोउवार, द सेकेंड सेक्स, राजकमल प्रकाशन दिल्ली 2003, पृ. 30
19. ममता कालिया, एक पत्नी के नोट्स, पृ. 37
20. निरुपमा सेवती, पतझड़ की आवाजें, पृ. 95
21. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, नई दिल्ली 2006, पृ. 87
22. रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियां, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2013, पृ. कवर पेज
23. वही, पृ. कवर पेज